श्रीगणेशाय नमः ॥

आदौ मङ्गलाचरणम् ॥

वन्दे शैलसुतापतिम्भयहरं मोक्षप्रदं प्राणिनां
मोहध्वान्तसमूहभञ्जनविधौ प्राभास्करं चान्वहम् ।
यद्बोधोदयमात्रतः प्रविलयं विघ्नस्य शैलव्रजा
यान्त्येवाखिलसिद्धयः प्रतिदिनं चाद्यन्तहीनं परम् ॥ १ ॥
यन्ध्यायन्ति मुनीश्वराः प्रतिदिनं संयम्य सर्वेन्द्रिया
ण्यर्वाक्तीर्थजलाभिषिक्तशिरसो नित्यक्रियानिर्वृताः ।
षट्चक्रादिविचारसारकुशला नन्दन्ति योगीश्वराः
तं वन्दे परमात्मरूपमनघं विश्वेश्वरं ज्ञानदम् ॥ २ ॥

दो० करौं वन्दना ब्रह्मको, जो अनन्त निजरूप ।
जेहिजानेजगभ्रम सकल, मिटै अन्ध तमकूप ॥
नाम रूप जामें नहीं, नहीं जाति अरु भेद ।
सो मैं पूरण ब्रह्म हूं, रहित त्रिविधपरिछेद ॥
ब्रह्मभाग जो उपनिषद, ताका करूं विचार ।
भाषामें तिस अर्थको, लखै सकल संसार ॥
सन्त संग से जो लख्यो, सो मैं करूं बखान ।
परमानन्द सहाय ते, जाने सकल जहान ॥
पुरी अयोध्या के निकट, अकबरपुर है गांव ।
जन्मभूमि मम जान तू, जालिमसिंहहि नांव ॥

यह संसार असार महाअपार समुद्र है, इसके पार होने के लिये उपनिषद् अद्भुत अलौकिक अद्वितीय नौका है, जिसमें बैठकर असंख्य सज्जन मुमुक्षुजन विना प्रयासही ऐसे दुस्तर सागर के पार होगये हैं और होते जाते हैं और भविष्यत्कालमें

+च = और
अक्षभिः = नेत्रोंद्वारा
भद्रम् = कल्याणको
पश्येम = देखें हम
+च = और
स्थिरैः = स्थिर यानी दृढ़
अङ्गैः = अंगोंकरके
+च = और
+स्थिराभिः = स्थिर यानी दृढ़
तनूभिः = शरीरों करके
+युष्माकम् = आपकी
तुष्टुवांसः = सदा स्तुति करतेहुये
+वयम् = हम
आयुः = आयुको
यत् = जोकि
देवहितम् = देवतों का हितहै याने यज्ञ दान आदिसेदेवतों का हित करनेवाला है
व्यशेमहि = प्राप्त होवें
+ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः = हमारे तापत्रय की शान्ति होवे अर्थात् आध्यात्मिक आधिभौतिक आधिदैविकरूप जो दुःखत्रय हैं उनका नाश होवे

ॐ हरिः ॐ

मूलम् ।

ईशा वास्यमिदꣳ सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत्
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्यस्विद्धनम् ॥ १ ॥

पदच्छेदः ।

ईशा वास्यम् इदम् सर्वम् यत् किञ्च जगत्याम्

जगत्याम् जगत् तेन त्यक्तेन भुञ्जीथाः मागृधः कस्यस्वित् धनम् ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
यत्किञ्च	= जो कुछ	त्यक्तेन	= पृथक् होकरके
जगत्याम्	= जगत् विषे	+ स्वात्मानम्	= अपने आत्माको
जगत्	= नामरूपात्मक जगत है	भुञ्जीथाः	= रक्षाकरे
+ तत्	= सो	+ च	= और
इदम्	= यह	कस्यस्वित्	= किसीके भी
सर्वम्	= सब	धनम्	= विषय भोगरूपधनकी
ईशा	= ईश्वरकरके	मागृधः	= आकांक्षा न करे
वास्यम्	= आच्छादित है		
तेन	= जिससे यानी जगत् मे		

ओ३म्

भावार्थ ।

ईशावास्यमिदꣳसर्वमिति ॥ "उपनिषद्" में तीन पद हैं, उपनिषद्, "उप" पदका अर्थ समीपताहे, या ऐक्यता है, और "नि" पद का अर्थ निश्चय है, और "षद्" पदका अर्थ नाश या मुक्ति है तीनों पदोंके मिलाने से ऐसा अर्थ होता है कि जो जीव और ब्रह्मके अभेदको विषयकरनेवाली ब्रह्मविद्या है, वह विद्वानों के जन्म मरण रूपी अनर्थको नाशकरके ब्रह्मको प्राप्त करती है, या बुद्धि के समीपस्थित ब्रह्मकी प्राप्ति करनेवाली जो निश्चयकरके विद्या

मूलम् ।

कुर्व्वन्नेवेह कर्म्माणि जिजीविषेच्छतꣳ समाः
एवन्त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्म्म लिप्यते नरे ॥२॥

पदच्छेदः ।

कुर्व्वन् एव इह कर्म्माणि जिजीविषेत् शतम् समाः एवम् त्वयि न अन्यथा इतः अस्ति न कर्म्म लिप्यते नरे ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
इह	= इस संसार में	अन्यथा	= और कोई उपाय
कर्माणि	= निष्काम कर्मों को	न	= नहीं
एव	= अवश्यही	अस्ति	= है
कुर्वन्	= करते हुये	एवम्	= इस प्रकार करते हुये
शतम्	= सौ	त्वयि	= तुझ
समाः	= वर्ष	नरे	= मनुष्य बिषे
जिजीविषेत्	= जीनेकी इच्छा करे	कर्म	= कर्म्म
इतः	= इसके सिवाय	न	= नहीं
		लिप्यते	= लिपायमान होगा

नोट—लिप्यते यह वर्तमान काल है परन्तु अर्थ भविष्यत्काल काही देताहै और इस मन्त्र का उपदेश मध्यमाधिकारी मुमुक्षु के प्रति है ॥ २ ॥

भावार्थ ।

कुर्वन्नेवेहेति ॥ जो पुरुष धन का अभिलाषी है, और ईश्वर के जानने में भी असमर्थ है, उसका त्याग में अधिकार नहीं, उसके प्रति श्रुतिकर्महीं करनेका उपदेशकरती है ॥ इहेति ॥ इसमृतलोक में अधिकारी पुरुष नित्यकर्म जो अग्निहोत्र और सन्ध्यादिकहैं, उन को करता हुवा और फलकी अभिलाषा से रहितहोता हुवा सौ वर्ष तक जीनेकी इच्छा करै, हे शिष्य! इस प्रकार जब तू कर्मकरैगा तब तू कर्म के बंधन में नहीं पड़ैगा, अर्थात् कियेहुये कर्म तुझको जन्ममरणरूपी संसार में नहीं बांधेंगे, किंतु अन्तःकरणके शुद्धि के हेतु होवेंगे और अन्तःकरण के शुद्धि होनेपर ज्ञानकी प्राप्ति होगी और ज्ञानद्वारा मुक्ति को तू प्राप्त होगा इसलिये स्ववर्णाश्रम के कर्मों का अनुष्ठान करना उचित है, गृहस्थ पुरुषको उनका त्याग उचित नहीं है ॥ २ ॥

मूलम् ।

असुर्य्या नाम ते लोका अन्धेन तमसावृताः
तांस्ते प्रेत्याभिगच्छन्ति ये के चात्महनो जनाः॥ ३॥

पदच्छेदः ।

असुर्य्याः नाम ते लोकाः अन्धेन तमसा आवृताः
तान् ते प्रेत्य अभिगच्छन्ति ये के च आत्महनः जनाः॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
+ये	जो	आवृताः	आवृत हैं
लोकाः	लोक	ते	वे
अन्धेन	अदर्शनात्मक (अति)	असुर्य्याः	असुरोंके समान
		नाम	प्रसिद्ध हैं
तमसा	अज्ञान से	च	और

ये = जो	जनाः = जन हैं
के = कोई	ते = वे
आत्महनः = आत्महत्यारे यानी अपने आत्माको नहीं उद्धार करनेवाले	तान् = उन लोकों को
	प्रेत्य = मरकरके
	अभिगच्छन्ति = प्राप्त होते हैं

भावार्थ ।

असुर्या नामतेलोकेति ॥ यह तीसरामंत्र अज्ञानी कर्मियों की निंदाकरता है ॥ असुर्याइति ॥ सुष्ठुरमंतेइतिसुरा ॥ भलीप्रकारसे जो आत्मामें रमणकरें व क्रीड़ाकरें, उनकानाम सुर है, वही आत्माराम कहेजाते हैं, उनसे जो भिन्न विषयोंमें रमण करनेवाले हैं, वे असुरकहेजाते हैं, उनके कर्मोंसे उत्पन्न हुये जो लोकहैं, और जिनमें वे जाकर भोगते हैं, वे असुरलोक कहे जाते हैं, लोकका अर्थ यहां योनि है, अर्थात् कामुक कर्मोंके करनेवाले कूकरसूकरादि योनियों में जाते हैं, और वेदविहित कर्मोंके करनेवाले देवतादि योनियों में जाकर शरीर को धारण करते हैं, और उन योनियों में कर्मों के फलको भोगते हैं, ये सब असुर कहेजाते हैं, क्योंकि आत्मा का अज्ञानरूपी जो तम है, उस करके उनके चित्त आच्छादित होते हैं, वे आत्मा के ज्ञानसे शून्य होने के कारण संसारचक्र में भ्रमते ही रहते हैं, अर्थात् एक शरीर को त्यागकर दूसरे शरीर में दूसरे से फिर तीसरे में जातेहैं, इसप्रकार घटीयंत्रकी तरह उनका चक्र चलताही रहता है, वास्तव में वे आत्महत्यारे हैं, वे आत्माका हनन करते हैं ॥ ३ ॥ अपने अज्ञान करके अजर अमर आत्माको जरामरणादि धर्मोंवाला मानते हैं, और इसी से

बार २ जन्म मरणको प्राप्तहोतेहैं यही आत्मा हननहै (प्र०) देवयोनियों से इतर योनि को असुर कहना चाहिये क्योंकि वह निषिद्ध कर्मोंके करने से मिलती है, देवयोनि तो बड़े भारी पुण्य कर्मों से मिलती है, उसको असुरयोनि कहना उचित नहीं है, (उ०) शुभ कर्मों के करने से देवयोनि की प्राप्ति होती है इसमें कोई संदेह नहीं, परंतु वह देवयोनि केवल विषय भोगों के लियेही होतीहै, आत्मज्ञानकी प्राप्तिके लिये नहीं होती है, इसीवास्ते देवता भी सब महान् भोगी होतेहैं आत्मज्ञान से शून्य होते हैं, अनेक कुकर्मों को करते हैं और अपने शरीर से गिरकर फिर छोटी योनियों में जाते हैं, इसीसे देवयोनिको भी असुर योनि कहाहै ॥ ३ ॥

नोट–इस मंत्रका उपदेश सकामकर्मियों के निंदाके प्रति है ॥

मूलम् ।

अनेजदेकम्मनसो जवीयो नैतद्देवा आप्नुवन्पूर्वमर्शत् तद्धावतोऽन्यानत्येति तिष्ठत्तस्मिन्नपो मातरिश्वा दधाति ॥ ४ ॥

पदच्छेदः ।

अनेजत् एकम् मनसः जवीयः न एतत् देवाः आप्नुवन् पूर्वम् अर्शत् तत् धावतः अन्यान् अत्येति तिष्ठत् तस्मिन् अपः मातरिश्वा दधाति ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
एतत्	= यह आत्मा	तिष्ठत्	= विकाररहितहै
अनेजत्	= अचलहै	एकम्	= अद्वैतहै

मनसः = मनसे
जवीयः = आगे जानेवाला है
पूर्वम् = पहलेसेही
अर्शत् = गयाहुवाहै
+यत् = जिसको
देवाः = { चक्षुरादि इन्द्रिय अभिमानीदेवताभी
न = नहीं
आप्नुवन् = प्राप्तहोते हैं
तत् = वही आत्मा
धावतः = शीघ्र चलतेहुये
अन्यान् = { औरोंको यानी मन आदिकों को
अत्येति = { उल्लंघन करता है यानी पीछे छोड़ देता है
+च = और
तस्मिन् = उसी चेतन आत्मा बिषे
मातरिश्वा = { सूत्रात्मा प्राण वायु
अपः = { अग्नि आदित्य आदि और सब प्राणियों के ज्वलन दहन आदि सब कर्मों को
दधाति = { धारण करता है यानीसबको अपने अपने कर्मों बिषे प्रेरणा करता है

भावार्थ ।

"अनेजदेकमिति" (प्र०) जिस आत्मा के स्वरूप के अज्ञान से अज्ञानीलोक जन्म मरणरूपी संसारको प्राप्त होते हैं और ज्ञानीलोक जिस आत्मा के स्वरूप के ज्ञानसे मुक्त होजाते हैं तिस आत्माका स्वरूप कैसा है (उ०)॥ अनेजत्॥ वह आत्मा चलनादि

क्रियोंसे रहित है, सारे जगत् में एकही है, नाना नहीं है, शरीरों के भेदसे भी भेद रहित है, मनसे भी वेगवालाहै, (प्र०) आपने आत्मा को "अनेजत्" यानी क्रियासेरहित पूर्व कहा, अब आप उसको मनसे भी अतिवेगवाला अर्थात् क्रियावाला कहते हैं, एकमेंही दो विरोधी धर्म कैसे रहसक्के हैं (उ०) विरोध नहीं आताहै क्योंकि जो आत्मा निरुपाधिक है अर्थात् अन्तःकरणादि उपाधियों से रहित है, वह व्यापकहै, और वह क्रिया से रहित ध्रुव है, और अन्तःकरणादि, उपाधियों में प्रतिबिंबित जो विशेष चेतनहै, वह जीवात्माहै, उसमें अन्तःकरणके साथ संबंध होने से क्रिया प्रतीत होती है और इसलिये उपाधि के संबन्ध से क्रियावाला कहाजाता है, मन सङ्कल्प करके देशांतर लोकांतरको क्षणमात्र में प्राप्त होताहै, और आत्मा व्यापक होनेसे वहां पर प्रथमहीं प्राप्त है, इसीकारण मंत्र ने उसको मनसे भी अधिक वेगवाला कहा है, (प्र०) मनकरके रूपादिकों का प्रत्यक्ष नहीं होताहै पर चक्षुरादिकों करके उनका प्रत्यक्ष होताहै तैसे ही आत्माका प्रत्यक्ष भी चक्षुरादिकों करके क्या न होना चाहिये (उ०)॥देवा॥ चक्षुरादि इन्द्रिय करके आत्मा प्राप्त नहीं होसक्ता है, जैसे मनमें स्थित मनका जो परिमाण है, तिसका मनकरके ग्रहण नहीं होता है, तैसे ही मनमें अनुगत आत्माका भी मन करके ग्रहण नहीं होताहै, और जैसे चक्षु इन्द्रिय के गोलक में स्थित जो अंजन है तिसका प्रत्यक्ष चक्षु इन्द्रिय करके नहीं होताहै, तैसे चक्षुमें अनुगत आत्माका भी चक्षुकरके प्रत्यक्ष नहीं होताहै, (प्र०) जिस आत्माका प्रत्यक्ष मन और चक्षुकरके नहीं होता है, वह असत् होगा (उ०) वह असत्य नहीं, किंतु सद्रूपही है, क्योंकि वह आत्मा व्यापक होने के कारण मन आदिकों से प्रथमहीं प्राप्त है, और जहां मन इन्द्रियादिक दौड़कर प्राप्त होते हैं, वहां वह उनसे प्रथमहीं प्राप्त रहताहै, और चेतन आत्मामें मातरिश्वा जो समष्टी प्राणोंका अभिमानी हिरण्यगर्भ है, वह चेतनद्वारा ब्रह्मा होकर जगत् और कल्पादिकों को

कर्त्ता है और उनको और संपूर्ण जीवों को विभागकरके स्थापन करताहै, तात्पर्य यहहै कि संपूर्ण कार्य करण संघात का व्यापार विना अधिष्ठान चेतन के नहीं होसक्ताहै ॥ ४ ॥

नोट—आनुवन्भूतकालहै परन्तु अर्थ वर्त्तमानकाल का देताहै॥

मूलम् ।

तदेजति तन्नैजति तद्दूरे तद्वदन्तिके तदन्तरस्य सर्वस्य तदु सर्वस्यास्य बाह्यतः ॥ ५ ॥

पदच्छेदः ।

तत् एजति तत् न एजति तत् दूरे तद्वत् अन्तिके तत् अन्तः अस्य सर्वस्य तत् उ सर्वस्य अस्य बाह्यतः॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
तत्	= सोई आत्मा		समीप है
एजति	= चलता है उपाधी करके	+च	= और
तत्	= सोई आत्मा उपाधी विना	तत्	= सोई आत्मा
न	= नहीं	अस्य	= इस
एजति	= चलता है	सर्वस्य	= संपूर्ण जगत् के
तत्	= सोई आत्मा	अन्तः	= अभ्यन्तर बिषे स्थित है
दूरे	= अविद्वानों से दूर है	उ	= और
तद्वत्	= वैसेही	तत्	= सोई आत्मा
अन्तिके	= विद्वानों के	अस्य	= इस
		सर्वस्य	= सब जगत् के
		बाह्यतः	= बाहर है

भावार्थ।

"तदेजतीति" मंत्रों को आलस्य नहीं है यानी एकही वस्तु की बार २ बाधार्थ कहा करते हैं इसी हेतुसे कहेहुये अर्थ को फिर मंत्र कहते हैं ॥ ईश्वररूप आत्मा वायुआदि उपाधि करके चलता प्रतीत होताहै, और ईश्वररूप आत्मा स्वभावकरके चलता नहीं है, क्योंकि वह अपने स्वभाव से क्रिया रहित है, वही ईश्वररूप आत्मतत्त्व अज्ञानियों को दूर प्रतीत होता है, यानी अज्ञान के कारण करोड़ों बरसोंतक भी उनको प्राप्त नहीं होता है, और वही ईश्वररूप आत्मा ज्ञानवानों को अतिसमीप है, क्योंकि वह उनका अपना आप आत्मा है, वही ईश्वरात्मा संपूर्ण चराचर जगत् के अन्तर बाहर आकाश की तरह व्यापक है ॥ ५ ॥

मूलम्।

यस्तु सर्वाणि भूतान्यात्मन्येवानुपश्यति सर्वभूतेषु चात्मानं ततो न विचिकित्सति ॥ ६ ॥

पदच्छेदः।

यः तु सर्वाणि भूतानि आत्मनि एव अनुपश्यति सर्वभूतेषु च आत्मानम् ततः न विचिकित्सति ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
तु	= और	अनुपश्यति	= देखता है
यः	= जो ज्ञानी पुरुष	च	= और
सर्वाणि	= सब	सर्वभूतेषु	= सम्पूर्ण भूतों में
भूतानि	= भूतोंको	आत्मानम्	= आत्माको (यानी अपनेको)
आत्मनिं	= आत्मामें (यानी अपने में)		
एव	= निश्चयकरके		

+ अनुपश्यति = देखता है
+ सः = वह
ततः = इसप्रकार के दर्शन से
न = नहीं
विचिकित्सति = सन्देह को प्राप्त होताहै यानीसंशय विपर्यय से रहितहुआ जीवन्मुक्त होताहै

भावार्थ ।

"यस्तुसर्वाणीति"—अब आत्मज्ञानके फलको कहते हैं ॥ जो विद्वान् ब्रह्मा से चीटी पर्यन्त संपूर्ण भूतों को अर्थात् संपूर्ण प्राणियों को अपना आत्मा जानता है, और संपूर्ण भूतों में अपनेही आत्माको देखता है, अर्थात् मैंहीं संपूर्ण भूतों में स्थित हूं, वह किसी प्राणीकी निंदा नहीं करता है, निंदा वह करताहै जो अपने से भिन्न दूसरे को देखता है, सो विद्वान् अपने से भिन्न किसी को भी नहीं देखताहै किंतु सबको अपना आत्मारूप करकेही देखता है और जब अपने आत्मा की निंदा अज्ञानी पुरुष भी नहीं करता है तब ज्ञानवान् कैसे करैगा ॥ ६ ॥

मूलम् ।

यस्मिन्सर्वाणि भूतान्यात्मैवाभूद्विजानतः
तत्र को मोहः कः शोक एकत्वमनुपश्यतः ॥ ७ ॥

पदच्छेदः ।

यस्मिन् सर्वाणि भूतानि आत्मा एव अभूत् विजानतः तत्र कः मोहः कः शोकः एकत्वम् अनुपश्यतः ॥

अन्वयः	पदार्थ
यस्मिन्	जिसकाल में
विजानतः	ज्ञानवान् को
सर्वाणि	संपूर्ण
भूतानि	भूत
आत्मा	आत्मा
एव	ही
अभूत्	सिद्ध होताहै यानी प्रतीत होताहै
तत्र	तिस काल में

अन्वयः	पदार्थ
एकत्वम्	एकत्व को यानी अभेद
अनुपश्यतः	देखनेवाले पुरुष को
कः	कहां
मोहः	मोह है
+च	और
कः	कहां
शोकः	शोकहै किन्तुमोह शोक रहित होता है

भावार्थ ।

"यस्मिन्सर्वाणीति"—जिस पूर्वोक्त अभेद ज्ञानी विद्वान् को प्राणीमात्र अपना आत्माही प्रतीति होनेलगता है, याने जब उसको ऐसा अनुभवहोताहै कि संपूर्ण प्राणियों का आत्मा मैं हीं हूं, तिस विद्वान् को न मोह है, न शोक है, क्योंकि उसकी मूला-विद्या आत्मविद्या करके नाशको प्राप्त होजाती है, और अ-विद्या के नाश होनेसे अविद्या के कार्य्य जो शोक मोहादिक हैं, वे भी सब उसके साथही नाशको प्राप्त होजाते हैं, क्योंकि कारण के नाशसे कार्य का भी नाशही होजाताहै ॥ ७ ॥

नोट—अभूत् भूतकाल है परंतु अर्थ वर्तमान का देताहै ॥

मूलम् ।

स पर्य्यगाच्छुक्रमकायमव्रणमस्नाविरꣳ शुद्ध-मपापविद्धम् कविर्म्मनीषी परिभूः स्वयम्भूर्याथातथ्यतोऽर्थान् व्यदधाच्छाश्वतीभ्यः समाभ्यः॥ ८॥

पदच्छेदः ।

सः पर्य्यगात् शुक्रम् अकायम् अव्रणम् अस्नाविरम् शुद्धम् अपापविद्धम् कविः मनीषी परिभूः स्वयम्भूः याथातथ्यतः अर्थान् व्यदधात् शाश्वतीभ्यः समाभ्यः॥

अन्वयः	पदार्थ
सः	= वह पूर्वोक्त आत्मा
पर्य्यगात्	= व्यापक है
शुक्रम्	= प्रकाशक है
अकायम्	= लिंगशरीर रहित है
अव्रणम्	= छिद्ररहित है
अस्नाविरम्	= नाड़ी रहित है
शुद्धम्	= निर्मल है
अपापविद्धम्	= पापरहित है
कविः	= त्रिकालदर्शी है
मनीषी	= सर्वज्ञ है
परिभूः	= सबके ऊपर है
स्वयम्भूः	= स्वयं विद्यमान है
च	= और
शाश्वतीभ्यः	= अनंतकालस्थायी है
+सः एव	= वही

समाभ्यः = ब्रह्माआदि प्रजापतियों के लिये	अर्थान् = अग्निहोत्रादि कर्मों को
याथातथ्यतः = यथा उचित	व्यदधात् = विधानकरता भया

भावार्थ ।

सपर्य्यगाच्छुक्रमिति ॥ प्र० ॥ पूर्व्व जो कहाहै कि यह सम्पूर्ण जगत् ईश्वरकाही स्वरूप है ॥ इसप्रकार जो जानता है उसके आवरण और विक्षेप दूर होजातेहैं, सो वार्ता नहीं बनती है, क्योंकि ॥ ईश्वरः शरीरवान् आत्मत्वात् जीववत् ॥ ईश्वर भी शरीर वाला है आत्मत्व के कारण जीवकी तरह है ॥ जैसे जीव में आत्मत्व है और शरीरवाला है तैसे ईश्वर में भी आत्मत्वहै, इस लिये वह भी शरीरवाला है ॥ उ० ॥ जिस आत्मत्व हेतु से तुम ईश्वरको शरीरवाला सिद्ध करते हो सोई तुम्हारा हेतु सत् प्रतिपक्ष है, जिस हेतुके साध्य के अभावका साधक दूसरा हेतु विद्यमान हो वह हेतु सत्प्रतिपक्ष कहाजाता है, सो तुम्हारे साध्यके अभावका साधक दूसरा हेतु विद्यमान है, इसलिये यह तुम्हारा हेतु सत्प्रतिपक्ष याने व्यभिचारी है ॥ ईश्वरः शरीराऽभाववान् व्यापकत्वात् आकाशवत् ॥ जैसे आकाश व्यापक है, और उसमें शरीरका अभाव है, तैसेही ईश्वर भी व्यापक है, और उसमें शरीरका अभाव है, यह व्यापकत्व हेतुही शरीर के अभावका साधक है, इसलिये तुम्हारा हेतु व्यभिचारी है, और व्यभिचारी होने से अपने साध्यके सिद्ध करने में असमर्थ है, और मंत्र भी ईश्वरके शरीर के अभाव को कहकरके ईश्वरके स्वरूप को दिखाताहै ॥ सपर्य्यगात् ॥ पूर्व्वोक्त रीति से ईश्वरात्मा

सर्व ओर से प्राप्त है, याने आकाशवत् व्यापक है, अब आगे तिसी ईश्वरात्मा के विशेषणों को मंत्र कहता है ॥ शुक्रम् ॥ वह शुद्ध है, अर्थात् प्रकाशमान है ॥ अकायम् ॥ वह लिंग शरीरसे रहित है ॥ अव्रणम् ॥ वह छिद्रसे रहितहै ॥ अस्नाविरं ॥ वह नाड़ी रहितहै ॥ अव्रणम् ॥ और अस्नाविरं ॥ इन दो विशेषणों करके मन्त्रने ईश्वरके स्थूल व लिंग शरीरका निषेध किया है, याने ईश्वर का न तो लिंग शरीर है, और न स्थूल शरीर है ॥ अपापविद्धं ॥ वह धर्माऽधर्मादि पापों से भी रहित है, याने अविद्या मल से रहित है, ऐसा कहने से कारण शरीर का मन्त्रने निषेध कियाहै ॥ कविः ॥ यह सबका द्रष्टा है ॥ मनीषी ॥ मनादिकोंका प्रेरकहै याने जाननेवालाहै अर्थात् सर्वज्ञ है ॥ परिभूः ॥ नानारूपों करके सर्वओर से प्रकाशमान होरहा है, या सब के ऊपर है, याने मालिक है ॥ स्वयंभूः ॥ यह स्वतः सिद्धहै, अर्थात् उसका कारण कोई नहीं है और आप सबका कारण है ॥ शाश्वतीभ्यः ॥ निरन्तर है ॥ समाभ्यः ॥ संवत्सर नाम प्रजापतियों के लिये ॥ याथातथ्यतः ॥ यथा उचित साध्य साधनरूप करके अर्थात् चेतन अचेतनरूप करके ॥ व्यदधात् ॥ नाना प्रकार के पदार्थों की कल्पना को करता भया ॥ इस मन्त्रमें यथार्थरूपसे ईश्वरके स्वरूप का निरूपण किया है ॥ ८ ॥

मूलम् ।

अन्धं तमः प्रविशन्ति येऽसम्भूतिमुपासते ॥
ततो भूय इव ते तमो यऽउ सम्भूत्याꣳरताः ॥ ९ ॥

पदच्छेदः ।

अन्धम् तमः प्रविशन्ति ये असम्भूतिम् उपासते
ततः भूयः इव ते तमः ये उ सम्भूत्याम् रताः ॥

अन्वयः	पदार्थ
ये	= जो कोई
असम्भूतिम्	= प्रकृति को
उपासते	= उपासना करते हैं
+ते	= वे
अन्धम्	= अदर्शनात्मक
तमः	= अज्ञान विषे
प्रविशन्ति	= प्रवेश करते हैं याने गिरते हैं
उ	= और

अन्वयः	पदार्थ
ये	= जो कोई
सम्भूत्याम्	= कार्यब्रह्म हिरण्यगर्भविषे
रताः	= रत हैं
ते	= वे
ततः	= उससे भी
भूयःइव	= अधिकतर
तमः	= अन्धकार याने अज्ञान विषे
+प्रविशन्ति	= प्रवेश करते हैं

भावार्थ ।

ज्ञान के प्रकरण को समाप्त करके अब इस बातको दिखलाते हैं कि जो पुरुष पूर्वोक्त आत्मतत्त्व को नहीं जानता है, और संन्यास में भी जिसका अधिकार नहीं है, किंतु संसारसे अत्यन्त प्रीति दिखलानेवाला है, उसके प्रति जो कामुक कर्म करना और भिन्न भाव से देवता की उपासना करना कहाहै उन दोनों की मंत्र निंदा करता है ॥ अंधमिति ॥ जो धनके अभिलाषी अज्ञानी अविद्याकी अर्थात् ज्योतिष्टोमादिरूप कर्म की उपासना को करते हैं वे अहंममाभिमानरूपी संसारको प्राप्त होते हैं ॥ प्र० ॥ यदि कर्म्मों की उपासना करने से संसार की प्राप्ति होती है तब फिर कर्मों का त्याग करके देवताओं की उपासना करनी चाहिये अथवा ॥ अहंब्रह्मास्मि ॥ ऐसी उपासना करनी चाहिये ॥ उ० ॥

जो कर्मों के त्यागी अज्ञानी कर्मोंको त्याग करके देवताओं की उपासनामें प्रीतिवाले हैं, और जो आत्मा के साक्षात्कार विना मुखसे "अहंब्रह्मास्मि" ऐसा कहते हैं, वे दोनों पूर्वोक्त अहंममाभिमानरूप संसारसे भी अधिकतर अहंममाभिमानरूप तमको प्राप्त होते हैं ॥ ६ ॥

मूलम् ।

अन्यदेवाहुः सम्भवादन्यदाहुरसम्भवात् इति शुश्रुम धीराणां ये नस्तद्विचचक्षिरे ॥ १० ॥

पदच्छेदः ।

अन्यत् एव आहुः सम्भवात् अन्यत् आहुः असम्भवात् इति शुश्रुम धीराणाम् ये नः तत् विचचक्षिरे ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
सम्भवात्	= सम्भूति करके	ये	= जो कोई
अन्यत् एव	= औरही	नः	= हमारेलिये
+फलम्	= फल	तत्	= उस सम्भूति और असम्भूति के फलको
आहुः	= कहते हैं	विचचक्षिरे	= कहतेभये
च	= और	+तेषाम्	= तिन
असम्भवात्	= असम्भूति करके	धीराणाम्	= धीरपुरुषों के
अन्यत्	= औरही	+वचनम्	= वचनको
+फलम्	= फल		
आहुः	= कहते हैं		

इति = इसप्रकार	श्रवण किया
शुश्रुम = हमलोगोंने	है

भावार्थ ।

अन्यदेवाहुरिति ॥ प्र० ॥ कर्म और उपासना ये दोनों पुरुषों को करनी उचित हैं सो दोनों की आप निंदा करते हैं, तब फिर दोनों का कुछ भी फल नहीं होगा ॥ उ० ॥ दोनोंका फल भिन्न भिन्न है ॥ अन्यदेव ॥ देवताकी उपासनाका फल देवलोक की प्राप्ति है, और कामुक कर्मोंके करने का फल पितृलोक की प्राप्ति है, और निष्काम कर्मोंके करने का फल चित्तकी शुद्धिद्वारा आत्मज्ञानकी प्राप्ति है ॥ तीनों फल एक दूसरे से श्रेष्ठ हैं, याने पितृलोकसे श्रेष्ठ देवलोक है, और देवलोकसे श्रेष्ठ आत्मज्ञान है, क्योंकि इसके द्वारा मुक्ति होती है ॥ १० ॥

मूलम् ।

सम्भूतिञ्च विनाशञ्च यस्तद्वेदोभयꣳ सह विनाशेन मृत्युन्तीर्त्वा सम्भूत्यामृतमश्नुते ॥ ११ ॥

पदच्छेदः ।

संभूतिम् च विनाशम् च यः तत् वेद उभयम् सह विनाशेन मृत्युम् तीर्त्वा सम्भूत्या अमृतम् अश्नुते ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
यः =	जो कोई	च =	और
तत् =	उस	विनाशम् =	असम्भूतिको
उभयम् =	दोनों	सह =	एकही
सम्भूतिम् =	सम्भूति	वेद =	जानता है

सः = वह	तीर्त्वा = तर करके
विनाशेन = असंभूति-द्वारा	असंभूत्या = सम्भूतिद्वारा
मृत्युम् = मृत्यु को	अमृतम् = अमरभावको
	अश्नुते = प्राप्त होताहै

भावार्थ ।

संभूतिंचेति ॥ पूर्वोक्त दोनों उपासना के अब फल को मन्त्र दिखाताहै ॥ सम्भूतिं च ॥ वास्तव में यह पद असम्भूति है, इसमें अकार का लोप होगयाहै, असम्भूति नाम अव्याकृत प्रकृति का है, वही संपूर्ण जगत् का मूल कारण है, और विनाश नाम नाशको प्राप्त होनेवाले हिरण्यगर्भका है, वह प्रकृति का कार्य है, जो पुरुष पूर्वोक्त प्रकृतिकी और हिरण्यगर्भकी उपासना एक साथ ही करना उचित समझता है और करता है तो वह उपासक हिरण्यगर्भ की उपासनासे अनैश्वर्यरूप दोषों से तरता है, और प्रकृति की उपासना से प्रकृति में लयरूप अमरभाव को प्राप्तहोता है ॥ ११ ॥

नोट—असंभूति प्रकृति को कहते हैं उसका उपासक प्रकृतिविषे लय होता है, इसलिये वह जन्म मरण भावसे अमर समझा गया है = सम्भूति हिरण्यगर्भ को कहते हैं उसका उपासक अणिमा आदि सिद्धियोंको प्राप्त होताहै, इसलिये वह भी जन्म मरणभाव से रहित समझागयाहै ॥ ११ ॥

मूलम् ।

अन्धन्तमः प्रविशन्ति येऽविद्यामुपासते ततो भूय इव ते तमो यऽउ विद्यायाꣳरताः ॥ १२ ॥

पदच्छेदः ।

अन्धम् तमः प्रविशन्ति ये अविद्याम् उपासते

ततः भूयः इव ते तमः ये उ विद्यायाम् रताः ॥

अन्वयः — पदार्थ

ये = जो कोई अविवेकी पुरुष
अविद्याम् = अविद्या के आश्रय अग्नि होत्रादि सकाम कर्मों को
उपासते = स्वर्ग्गादि फल के निनित्त उपासना करते हैं
+ ते = वे
अन्धम् = अदर्शनात्मक
तमः = अज्ञानावृत शरीर में
प्रविशन्ति = प्रवेश करते हैं

उ = और
ये = जो कोई
विद्यायाम् = सकामकर्म त्यागकरके केवल देवतों के भेद भाव उपासना विषे
रताः = तत्परहैं
ते = वे
ततः = उस अंधतम से भी
भूयः इव = अत्यंत
तमः = अन्धकारको
प्रविशन्ति = प्राप्तहोते हैं

भावार्थ ।

अन्धंतमःप्रविशंतीति ॥ इस बारहवें मन्त्रमें व्याकृत अव्याकृत उपासना की निंदा करते हैं ॥ अंधमिति ॥ अव्याकृत नामक जो जगत्का कारणीभूत प्रकृति है उसकी अज्ञ पुरुष उपासना करते हैं, और कहते हैं कि वह प्रकृति हमहीं हैं, वे अंधतम को

अर्थात् अहंममाभिमानरूप अज्ञानको ही प्राप्त होते हैं, और जो पुरुष संभूति की अर्थात् कार्यरूप हिरण्यगर्भ की उपासना करते हैं, वे पूर्वोक्त तमसे भी अधिक अहंममाभिमानरूप संसार को प्राप्त होते हैं ॥ इस मंत्र में जो असंभूति पद है, वह कारणरूप प्रकृति का वाचक है, और संभूति पद जो है वह कार्यरूप हिरण्यगर्भ का वाचक है ॥ १२ ॥

मूलम् ।

अन्यदेवाहुर्विद्याया अन्यदाहुरविद्याया इति शुश्रुम धीराणां ये नस्तद्विचचक्षिरे ॥ १३ ॥

पदच्छेदः ।

अन्यत् एव आहुः विद्यायाः अन्यत् आहुः अविद्यायाः इति शुश्रुम धीराणाम् ये नः तत् विचचक्षिरे ॥

अन्वयः	पदार्थ
विद्यायाः	= विद्याका
अन्यत्एव	= औरही
+ फलम्	= फल
आहुः	= कहते हैं
अविद्यायाः	= अविद्याका
अन्यत्एव	= औरही
+ फलम्	= फल
आहुः	= कहते हैं
इति	= ऐसा
तेषाम्	= उन

अन्वयः	पदार्थ
धीराणाम्	= बुद्धिमान् पुरुषों के
+ वचनम्	= वचनको
शुश्रुम	= हमने सुनाहै
ये	= जिन्होंने
नः	= हमारे लिये
तत्	= उसको याने कर्म्म और ज्ञान को
विचचक्षिरे	= उपदेश कियाहै

भावार्थ ।

अन्यदेवाहुरिति ॥ अब इस मन्त्रमें संभूति असंभूति की उपासना से जो फल होता है उस फल के भेदको कहते हैं ॥ संभवात् ॥ हिरण्यगर्भरूपी कार्य्य की उपासना से अणिमादि ऐश्वर्य्यकी प्राप्तिरूपी फल उपासक को मिलता है, और असम्भवात् ॥ अव्याकृत की उपासना से प्रकृति में लयरूपी फल मिलता है, वेदके वेत्ता धीर पुरुष इसप्रकार दोनोंके फलोंको भिन्न२ कथन करते हैं, ऐसा हमने वेदके वेत्ता जो आचार्य्य और विद्वान् हैं उनसे सुना है, मूलमें जो " सम्भव " पद है वह कार्यरूपी हिरण्यगर्भका वाचक है, और जो " असम्भव " पदहै वह कारणरूपी प्रकृति का वाचक है ॥ १३ ॥

मूलम् ।

विद्याञ्चाविद्याञ्च यस्तद्वेदोभयꣳ सह अविद्यया मृत्युन्तीर्त्वा विद्ययामृतमश्नुते ॥ १४ ॥

पदच्छेदः ।

विद्याम् च अविद्याम् च यः तत् वेद उभयम् सह अविद्यया मृत्युम् तीर्त्वा विद्यया अमृतम् अश्नुते ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
च	= और	च	= और
यः	= जो कोई	अविद्याम्	= अविद्या यानी अग्निहोत्रादि निष्कामकर्म
विद्याम्	= विद्या यानी देवताओंकी अभेद उपासना	तत्	= उन
		उभयम्	= दोनोंको

सह = { एकही पुरुष करके अनुष्ठानकरने योग्य }
वेद = जानता है
+सः = वह पुरुष
अविद्यया = { अविद्याद्वारा यानी कर्म्मों द्वारा }
मृत्युम् = मृत्यु को
तीर्त्वा = तरकरके
विद्यया = { विद्याद्वारा यानीअहं-ग्रह उपा-सनाद्वारा }
अमृतम् = अमरभावको
अश्नुते = प्राप्त होताहै

भावार्थ ।

विद्यांचाविद्यांचेति ॥ पूर्व्वले मन्त्र में कर्म और देवताकी उपासना का पृथक् २ फल कहा है, अब इस मन्त्र में दोनों के समुच्चय के फल को कहते हैं ॥ विद्यांचाविद्यांचेति ॥ जो पुरुष देवताकी उपासना और कर्मोंको एक साथही करताहै वह कर्मों करके मृत्युको उत्क्रमण करता है, और देवताकी उपासना करके अमरभाव उपास्यरूप देवताको प्राप्त होताहै ॥ १४ ॥

मूलम् ।

हिरण्मयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखम् तत् त्वम्पूषन्नपावृणु सत्यधर्म्माय दृष्टये ॥ १५ ॥

पदच्छेदः ।

हिरण्मयेन पात्रेण सत्यस्य अपिहितम् मुखम् तत् त्वम् पूषन् अपावृणु सत्यधर्म्माय दृष्टये ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
पूषन्	= हे पोषणकर्त्ता सूर्य	पात्रेण	= पात्रकरके
सत्यस्य	= सत्य परमात्माके	अपिहितम्	= आच्छादित है
तत्	= उस	त्वम्	= तू
मुखम्	= द्वारको	सत्यधर्माय	= मुझ सत्यधर्म्मा के
+यत्	= जो	दृष्टये	= दर्शनके अर्थ
हिरण्मयेन	= तेजोमय	अपावृणु	= खोलदे

भावार्थ।

हिरण्मयेनेति ॥ पूर्वले मन्त्र में "अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्ययाऽमृतमश्नुते" उस समुच्चय उपासना करके सूर्य्यमण्डल में स्थित जो पुरुष है उसी की प्राप्ति उस उपासक को होती है ॥ जिसकालमें उपासक पुरुष अपने शरीरको त्याग करके इसलोक से सूर्य्यमण्डल को जाता है तब वहां सूर्य्यमण्डलस्थ पुरुष से प्रार्थना करता है ॥ हिरण्मयेनेति ॥ हे पूषन्! हे जगत् के पालन करनेहारे! आप कृपा करके सत्य परमात्मा के द्वारको जो आप के तेजोमय पात्रसे आच्छादित है मुझ सत्य धर्मावलम्बी के दर्शनार्थ खोल दीजिये, मैं आपका सेवक हूं, दूसरा अर्थ यह है हे जगत् के पालन करनेवाले! मेरे प्राप्ति का द्वार आपका मुख है, वह स्वर्ण की तरह प्रकाशमान पात्र करके आच्छादित है, सो तिस तेजको आप हटा लेवो तो मैं आपका दर्शन करूं मैंने सत्य धर्म को ग्रहण करके विधिपूर्वक आपकी उपासना की है, उसका फल अब मुझ सत्यधर्मावलम्बी को प्राप्त होना चाहिये, इस प्रकार उपासक सूर्य्यमण्डलमें जाकर सूर्य्यमण्डलस्थ पुरुष के आगे प्रार्थना करता है ॥ १५ ॥

मूलम् ।

पूषन्नेकर्षे यम सूर्य्य प्राजापत्य व्यूह रश्मीन् समूह ॥ तेजो यत्ते रूपङ्कल्याणतमन्तत्ते पश्यामि योऽसावसौ पुरुषः सोऽहमस्मि ॥ १६ ॥

पदच्छेदः ।

पूषन् एकर्षे यम सूर्य्य प्राजापत्य व्यूह रश्मीन् समूह तेजः यत् ते रूपम् कल्याणतमम् तत् ते पश्यामि यः असौ असौ पुरुषः सः अहम् अस्मि ॥

अन्वयः	पदार्थ
पूषन्	हे पोषणकर्त्ता
एकर्षे	हे एकचलनेवाला
यम	हे सर्व के संयमन कर्त्ता
सूर्य	हे सर्व्वरसके स्वीकार कर्त्ता सूर्य
प्राजापत्य	हे प्रजापति के पुत्र
+स्वान्	अपने
रश्मीन्	किरणों को
व्यूह	अलगकर
+ च	और
तेजः	तेजको
समूह	एकत्रकर
+तु	ताकि
यत्	जो
ते	तुम्हारा
कल्याण तमम्	कल्याण तम
रूपम्	रूप है
तत्	तिसको
ते	तुम्हारे
+प्रसादेन	प्रसाद से
पश्यामि	देखूं मैं
यःअसौ	जो यह
+ त्वयि	तेरे विषे
+परिपूर्णः	परिपूर्ण

पुरुषः = पुरुष है	अहम् = मैं
सः = सोई	अस्मि = हूं
असौ = यह	

भावार्थ ।

पूषन्नेति ॥ इस मन्त्र में भी बहुतप्रकार के विशेषणों करके उपासक सूर्य्यमण्डलस्थ पुरुष को संबोधन करताहुआ प्रार्थना करताहै ॥ पूषन्नेति ॥ हे संपूर्ण जीवों के पोषण करनेवाले ! हे एकाकी गमन करनेवाले ! हे संपूर्णजीवों के नियामक ! हे संपूर्ण लोकों को उनके कर्मों में प्रवृत्त करनेवाले ! हे प्रजापति के पुत्र ! आप अपने तेजोमय किरणों को समेट लो ताकि मैं आपके अतिशय कल्याणरूप को देखूं, मेरी और कोई याचना नहीं है, आप बिषे जो पूर्ण पुरुष स्थित है, वह मेराही स्वरूप है, यानी मैं हीहूं ॥ १६ ॥

नोट–सूर्य्य भगवान् का उपासक सूर्य्य भगवान् की प्रार्थना मरते समय ऊपर कहेहुये प्रकार करता है ॥

मूलम् ।

वायुरनिलममृतमथेदं भस्मान्तꣳ शरीरम् ॥ ॐ क्रतो स्मर कृतꣳ स्मर क्रतो स्मर कृतꣳ स्मर ॥ १७ ॥

पदच्छेदः ।

वायुः अनिलम् अमृतम् अथ इदम् भस्मान्तम् शरीरम् ओम् क्रतो स्मर कृतम् स्मर क्रतो स्मर कृतम् स्मर ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
अथ	= इसकालमें यानी देहावसानसमय	वायुः	= प्राणवायु
		+मम	= मेरा

अनिलम् = सूत्रआत्मा समष्टि प्राणका
+ च = और
+ मम = मेरा
अमृतम् = लिंगशरीर
+ स्वकारणम् = { अपनेकारण तत्त्वको
+ प्राप्येत = प्राप्त हो
+ च = और
इदम् = यह
शरीरम् = स्थूलशरीर
भस्मान्तम् = { अन्त भस्म भावको
+ भूयात् = प्राप्त हो
+ च और
क्रतो = हे मन
ओम् = ॐकारको
स्मर = स्मरण कर
+ च = और
कृतम् = कियेहुये शुभ कर्म्मोंको
स्मर = स्मरण कर
क्रतो = हे मन
कृतम् = कियेहुये शुभ कर्म्मों को
स्मर = स्मरण कर
स्मर = स्मरण कर

भावार्थ ।

मरणकाल में उपासक पुरुष सूत्रात्मा प्राण को इसप्रकार अनुसंधान यानी चिंतन करना चाहिये ॥ वायुरिति ॥ मेरे जो प्राण हैं सो अमरभावरूप वायु देवता में लीन हों मेरा जो यह स्थूल शरीर है सो अग्नि में हवन किया हुआ भावको प्राप्त हो हे मन ! ॐकारके वाच्य ईश्वर को स्मरण कर, संपूर्ण शुभकर्मों को स्मरण कर, हे मन सँभल सावधानहो, परमात्मा में चित्त लगा, इसीकाल के वास्ते तू कर्म उपासना और ज्ञान में प्रवेश हुआ था ॥ १७ ॥

नोट–सूत्रात्मा प्राणका उपासक मरते समय ऊपर कहेहुये प्रकार ॐकार को स्मरण करताहै ॥

मूलम् ।

अग्ने नय सुपथा राये अस्मान् विश्वानि देव वयुनानि विद्वान् युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनो भूयिष्ठान्ते नम उक्तिं विधेम ॥ १८ ॥

पदच्छेदः ।

अग्ने नय सुपथा राये अस्मान विश्वानि देव वयुनानि विद्वान् युयोधि अस्मत् जुहुराणम् एनः भूयिष्ठाम् ते नमउक्तिम् विधेम ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
देव	= हे प्रकाशात्मक देव,	अस्मत्	= हमारे
अग्ने	= हे अग्ने !	जुहुराणम्	= कुटिल वचनात्मक
विश्वानि	= सर्व	एनः	= पापको
वयुनानि	= कर्म्मोंको	युयोधि	= नाशकर
विद्वान्	= जाननेवाला तू	ते	= तेरे अर्थ
अस्मान्	= हम कर्म कर्त्ताओं को	भूयिष्ठाम्	= बहुत से
राये	= कर्मफलके अर्थ	नमउक्तिम्	= नमस्कार के वचन
सुपथा	= शुभमार्ग से	विधेम	= हम कहते हैं
नय	= ले चल		
+च	= और		

भावार्थ ।

अग्नेनयेति ॥ अग्नि देवता का उपासक मरण काल में सुन्दर मार्गसे चलनेके लिये इसप्रकार प्रार्थना करता है ॥ अग्ने-

रिति ॥ हे अग्ने ! कर्म उपासना के समुच्चयका अनुष्ठान करने वाले हमको शोभन मार्ग से अर्थात् उत्तरायणमार्ग से उपास्य देवके पास कर्म और उपासनाके फल के भोगने के लिये प्राप्त करो, हे देव ! आप हमारे संपूर्ण उपासना और कर्मों के जानने वाले हो, आप हमारे कुटिल वचनरूपी पाप को नाश करो, आप के प्रति वारंवार मैं नमस्कार करता हूं ॥ १८ ॥

इति ॥

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥

नोट–अग्नि देवताका उपासक मरण काल में अपने मनमें अग्नि देवताकी प्रार्थना करता है ॥ १८ ॥

इति वाजसनेयसंहितायामीशावास्योपनिषद् समाप्तिमगात् ॥

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥



विक्रयार्थ पुस्तकों का सूचीपत्र ॥

केनोपनिषद् भाषाटीका सहित, क़ीमत ≡)॥

सामवेदीय तलबकार शाखीय भाषाटीका सरल मध्यदेशी हिन्दी भाषा में है–जिसको रायबहादुर बाबू ज़ालिमसिंह जी ने पंडित गङ्गादत्त, रामदत्त जोशी की सहायता से अनुवाद किया इस में भी पदों के अन्वयपूर्वक भावार्थ स्पष्ट किया है और ऐसी टीका किया है कि अल्पज्ञ मनुष्यों के भी समझ में आजावे ॥

माण्डूक्योपनिषद् भाषाटीका सहित, क़ीमत ≡)

रायबहादुर बाबू ज़ालिमसिंह जी की भाषाटीका सहित–जिसमें ओंकार स्वरूप का प्रतिपादन व ब्रह्म और आत्मा की अभेदता का निरूपण चार प्रकरणों में अच्छी तरह से किया है ॥

कठवल्लीउपनिषद् भाषाटीका सहित, क़ीमत ॥=)

रायबहादुर बाबू ज़ालिमसिंह जी की भाषाटीका सहित—इस में भी ऊपर लिखेहुये के अनुसार भावार्थ स्पष्ट कियागया है और समझने की सुगमता के लिये गुरुशिष्यसंवादपूर्वक पूर्णज्ञान लखाया है ॥

मुण्डकोपनिषद् भाषाटीका सहित, क़ीमत ॥)

रायबहादुर बाबू ज़ालिमसिंह जी की भाषाटीका सहित—जिसमें वादी प्रतिवादी के प्रश्नोत्तर से ब्रह्मका निर्णय व जगदुत्पत्ति व प्रत्येक अन्नादि का सम्भव व अग्निहोत्रादि क्रियाओं का विधान मन्त्रों द्वारा वर्णित है ॥

तैत्तिरीयोपनिषद् भाषाटीका सहित, क़ीमत ॥≡)

रायबहादुर बाबू ज़ालिमसिंह जी की भाषाटीका सहित–जिसमें तैत्तिरीय शाखा के प्रकट होने का उदाहरण और स्वर मात्रा व वर्णों के उच्चारण की शिक्षा का नियम व वर्णोंके सम्बन्धरूप संहिताकी उपासना व बुद्धि व लक्ष्मी की कामनावाले पुरुषों के अर्थ साधन जप और हवनादि की क्रियायें वर्णित हैं ॥

ऐतरेयोपनिषद् भाषाटीका सहित, क़ीमत ।)॥

रायबहादुर बाबू ज़ालिमसिंह जी की भाषाटीका सहित–जिसमें आत्मा व ब्रह्मका निरूपण और प्राण व प्रणवकी उपासना की व्याख्या व संन्यासादि आश्रमों के लक्षण व धर्म अच्छेप्रकार वर्णित हैं ॥

मिलने का पताः—

मैनेजर नवलकिशोर प्रेस, हज़रतगंज, लखनऊ.